

डॉ. शुद्धात्म प्रकाश जैन
सोमैया विद्याविहार विश्वविद्यालय, मुंबई

प्रतिरोध से प्रगति तक

अग्रिम सत्र 2004-05 में मैंने अपना स्थानान्तरण (Transfer) जम्मू से जयपुर करवा लिया था| राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के जयपुर परिसर में शिक्षाशास्त्र विभाग में एक ही कक्षा होती थी और मुझसे पहले वहां छह अध्यापक थे, जिनमें से एक अध्यापक प्रो0 वाई एस रमेश डेपुटेशन पर अन्यत्र चले गये थे, उनके रिक्त पद पर ही मेरी नियुक्ति हुई थी| लेकिन बीच सत्र (mid of academic session) में वे वापस आ गये और मेरी नौकरी चली गई| इस दौरान मेरा विवाह हो चुका था, अतः मेरे लिए इस समय नौकरी का चले जाना दुखद हो गया था| अतः मैंने इस समय का सदुपयोग करते हुए शिक्षाशास्त्री प्रवेश परीक्षा (Pre B. Ed. Test) की एक मार्गोपदेशिका (Guide Book) लिखना शुरू किया| जल्द ही यह मार्गोपदेशिका तैयार हो गई और मैंने स्वयं ही इसे प्रकाशित करने का निर्णय लिया| लगभग तीन महीने गुजरने के बाद इसी समय प्रो. वाई एस रमेश जी डेपुटेशन पर वापस चले गए और मुझे वापस वही जॉब मिल गई|

नव सृजित मार्गोपदेशिका को प्रकाशित करने के लिए मैंने 'सर्वार्थसिद्धि प्रकाशन' नाम से एक प्रकाशन (Publication) बनाया और इस मार्गोपदेशिका का भी यही नाम (सर्वार्थसिद्धि) रखा| मार्केट में यह बहुत तेजी से लोकप्रिय हो गई| इसकी पांच सौ प्रतियां (copies) तुरन्त ही एक माह के अन्दर ही बिक गई| एक माह बाद इसका द्वितीय संस्करण (second edition) 1000 प्रतियों का प्रकाशित हुआ| वह भी तेजी से बिक गया| मैं ही इसका लेखक, मैं ही सम्पादक, मैं ही प्रकाशक और मैं ही इन्वेस्टर और डिस्ट्रीब्यूटर| गांव-गांव और शहर-शहर जाकर इसे बेचा, बहुत परिश्रम किया, लेकिन परिश्रम रंग लाया|

मेरी इस साधना और उसके प्रतिफल को देखकर कुछ अन्य अध्यापकों के मन में मेरे प्रति द्वेष और ईर्ष्या के अंकुर फूट पड़े| वे मुझसे अत्यन्त वरिष्ठ थे, मैं बहुत जूनियर था, अस्थाई था और मैं उनका कोई मुकाबला नहीं कर सकता था, मैं तो मात्र मेरे समय का सदुपयोग कर रहा था और परिश्रम से अपना पेट पाल रहा था| लेकिन उनका मुझसे इसप्रकार उखड़ जाना मेरे लिए कष्टकारी था| उनको लगा कि यह 'कल का छोकरा' यदि इसप्रकार तेजी से काम करेगा तो जल्दी ही हमें पीछे छोड़ देगा| कभी-कभार पीठ पीछे इसप्रकार के संकेत मुझे सुनने को मिलते रहते थे|

उक्त ईर्ष्या और द्वेष के परिणामस्वरूप मुझे अध्यापन के कालांश बहुत कम प्राप्त हुए| सरकारी रिकॉर्ड में मेरे पांच कालांश दिखाये गये, लेकिन पढ़ाने को एक मिला, उसमें भी कोई निश्चित विषय नहीं मिला| रिकॉर्ड में दर्शाये गये शेष चार कालांश में मुझे कहा गया कि लाइब्रेरी की फटी-पुरानी पुस्तकों की धूल साफ करो और उनकी जिल्द को चिपकाओ| यह काम मुझे मेरे ओहदे के अनुकूल न लगा, और मैंने भी सिंहवृत्ति से उनका प्रतीकार किया|

जो एक कालांश मुझे पढ़ाने मिला, उसमें भी किसी निश्चित विषय के न मिलने से मैंने उस कालांश में अपने अनुभव शेयर करना शुरू किया| उस कालांश में मैंने शिक्षाचार्य और पीएच.डी. के दौरान किये अपने शोधकार्य मूल्य शिक्षा और जैन शिक्षादर्शन पर चर्चायें कीं| सन् 2002 में मैं जब शिक्षाचार्य कर रहा था, तब सम्पूर्ण देश में भगवान महावीर का 2600वां निर्वाण दिवस बड़े धूमधाम से मनाया जा रहा था| उसी समय मुझे शिक्षाचार्य में एक लघुशोध भी लिखना था, अतः मैंने अपना विषय ''भगवान महावीर का शिक्षादर्शन तथा उसकी प्रासंगिकता'' रखा| पीएच.डी. के दौरान 'मूल्यपरक शिक्षा के विकास में जीवन विज्ञान की भूमिका' पर शोध कर रहा था| ये दोनों शोध शिक्षाशास्त्र से सम्बन्धित थे और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छात्रों के पाठ्यक्रम का हिस्सा भी थे, अतः मैंने उक्त विषयों पर कक्षा में अपने व्याख्यान प्रारम्भ कर दिये, जो कि छात्रों को बहुत पसंद आये|

छात्रों की प्रेरणा से मैंने उन्हें लिपिबद्ध करना शुरू कर दिया| कुछ ही समय में लिपिबद्ध किये गये विषय का विस्तार हो गया और यह एक पुस्तक का रूप ले चुका था| कल्पना प्रकाशन, जयपुर ने इस पुस्तक को प्रकाशित करने में रुचि दिखाई और 2007 में मेरी पहली पुस्तक ''भगवान महावीर का शिक्षा दर्शन'' नाम से आ गई| इस प्रकार मैंने जाना कि जीवन की विरोधी और प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी हमारे विकास और सृजन में सहायक होती हैं| जब जीवन में कठिनाइयाँ आती हैं, तब मनुष्य नई राहें खोजने लगता है, अपनी क्षमताओं को पहचानता है और भीतर छिपी हुई रचनात्मक सामर्थ्य को प्रकट करता है| इसलिए मैंने समझा कि विरोध और कठिनाई को नकारात्मक नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वही हमें नई ऊँचाइयों तक पहुँचने की प्रेरणा देती हैं|